अन्य पिछड़ा वर्ग और सामाजिक न्याय

अविनाश जाटव *, प्रो. नीता बोरा शर्मा **

सारांश

अगस्त 1990 को राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के निर्णय ने, अन्य पिछड़े वर्ग के सामाजिक न्याय के लिए रास्ते खोल दिए। भारतीय संदर्भ में, वर्ग भी जातियों के मिलने से बने है, ओबीसी से संबंधित मुद्दे मुख्य रूप से जाति व्यवस्था से उत्पन्न हुए हैं। व्यक्ति की जाति वह होती है जिसमें उसका जन्म होता है। सामाजिक न्याय का संबंध पूरे समाज में लाभों और समता के वितरण से है, जिससे समाज के प्रत्येक सदस्य को दूसरों की तरह समान स्तर की भलाई का आनंद मिलता है। सामाजिक न्याय की प्राप्ति विभिन्न वर्गों के परस्पर विरोधी हितों के सामंजस्य के लिए एक नए कानूनी आदेश की शुरुआत करके समाज के बुनियादी ढांचे को बदलने के लिए मजबूर करती है। भारतीय संदर्भ में, जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक न्याय अपना अलग महत्व रखता है। प्रस्तुत पत्र में अन्य पिछड़े वर्ग के लिए सामाजिक न्याय का अवलोकन किया गया है।

संकेत शब्द : अन्य पिछड़ा वर्ग, सामाजिक न्याय, जाति, मंडल आयोग, आरक्षण।

प्रस्तावना

जाति भारतीय समाज की एक पुरातन और गहरी जड़ में व्याप्त व्यवस्था है। यह सामाजिक स्तरीकरण का एक रूप है जो निर्धारित स्थिति पर आधारित है जिसमें पदानुक्रम, सजातीय, वंशानुगत व्यवसाय आदि विशेषता है, साथ ही ये उपरोक्त विशेषताएँ प्रत्येक जाति समूह में कुछ हद तक क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ पाई जाती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुछ विशेषताओं पर एकमत होने के बावजूद, जाति व्यवस्था और इसकी विशेषताएं एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होती हैं और ये जातियाँ, सामान्य, पिछड़ा वर्ग और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की श्रेणियों में विभाजित की गई हैं। इन श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी में लोगों की यह समय–सारणी अलग–अलग राज्यों द्वारा निर्धारित मानदंडों के आधार पर एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है।

न्याय की परिभाषा बहुआयामी है। लोग इसे अदालत या न्यायिक प्रणाली से जोड़ते हैं लेकिन यह इसके दायरे में से एक है। न्याय एक उदारवादी सही या गलत का विचार, मूल्य और भावना है जिसे एक व्यक्ति समाज के भीतर देखता है। न्याय का प्रश्न राजनीति में केंद्रीय महत्व का है। सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए समान व्यवहार के सिद्धांत को आनुपातिकता के सिद्धांत के साथ संतुलित करने की आवश्यकता है। सामाजिक न्याय का यह सुनिश्चित करने का एक कार्य है कि प्रत्येक नागरिक अपनी जाति, वर्ग, धर्म या अन्य जनसांख्यिकीय कारकों के बावजूद समान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अवसरों का आनंद लेता है। यह एक विशेष रूप से कठिन कार्य है, लेकिन भारत देश में यह सिद्धांत निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण आदर्श भी है, जो भाषाई, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातीय समूहों के संदर्भ में हमारे पास मौजूद विविधता से परिभाषित होता है। इन समूहों के बीच बढ़ते तनाव के समय में हमारे देश के संस्थानों और नागरिकों के लिए सामाजिक न्याय के अधिकार की रक्षा करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सामाजिक न्याय की आवश्यकता है क्योंकि असमानता आज हर जगह फैली है। संसाधनों तक पहुंच में असमानता, मानवाधिकार और सुरक्षा हासिल करने में असमानता, भेदभाव से मुक्ति में असमानता– चाहे वह जाति, वर्ग, धर्म या नस्ल की हो। इसलिए असमानता को कम करना निश्चित रूप से नैतिक रूप से सही और व्यावहारिक है।

समाज भी एकरूप नहीं है। इसमें विषम पृष्ठभूमि के लोग भी हैं। यह भिन्न पृष्ठभूमि कई कारकों के कारण हो सकती है, लेकिन तथ्य यह है कि भारत में अभी भी विविधता में एकता है। जब किसी समाज में अलग–अलग पृष्ठभूमि के लोग होते हैं, तो ये पृष्ठभूमि धर्म, क्षेत्र, नस्ल या कई अन्य मुद्दों या कारकों के दृष्टिकोण से हो सकती है। हमारे संविधान की प्रस्तावना ने सभी को समान अधिकार दिए हैं और जब हम सामाजिक न्याय शब्द की बात करते हैं तो यह किसी राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक या समाज के प्रत्येक सदस्य को कुछ बुनियादी अधिकारों और स्वतंत्रता का उल्लेख करता है। साथ ही, जब हम सामाजिक न्याय की बात करते हैं, तो हम सभी के लिए कुछ बुनियादी अधिकारों और स्वतंत्रता का उल्लेख करते हैं और जब कोई इन स्वतंत्रता और अधिकारों से वंचित होता है तो सामाजिक अन्याय का मुद्दा उठता है।

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग डीएसबी परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, डीएसबी परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

जब सभी को समान अधिकार और स्वतंत्रता की समान स्थिति प्राप्त है, तब यह सामाजिक अपेक्षा है कि सभी समूहों को समान भागीदारी दी जानी चाहिए। अब जब हम सभी समूहों के लिए समान भागीदारी कहते हैं तो इसका अर्थ है सभी समूहों की सभी सामाजिक और राष्ट्रीय गतिविधियों में समान भागीदारी। किसी भी आधार पर कोई कमी नहीं होनी चाहिए। यही अभाव सामाजिक अन्याय का मूल कारण है, अर्थात कुछ कारकों के आधार पर कुछ सामाजिक अन्याय होता है, तभी सामाजिक न्याय का प्रश्न आता है।

भारत के संविधान ने अनुच्छेद 15(4) और 16(4) में ''पिछड़ा वर्ग'' शब्द का उल्लेख किया है जो राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए अधिकृत करता है। यद्यपि अनुच्छेद 15, 16, 17, 19, 23 और 24 में हमें सामाजिक न्याय के कई पहलुओं की गारंटी दी गई है और संविधान ने हमें सामाजिक न्याय के कार्यान्वयन के लिए एक व्यापक गुंजाइश दी है, लेकिन प्रश्न यह है कि व्यावहारिक रूप में हम सामाजिक न्याय को कितना प्राप्त कर पाए हैं। यदि हम जाति, वर्ग की बात करें तो निःसंदेह संविधान में सामाजिक न्याय दिया गया है लेकिन व्यवहार में सामाजिक न्याय को प्राप्त करना अत्यंत कठिन काम है।

जाति–आधारित शोषण एक चिंताजनक प्रथा है जो पूरे भारत में व्याप्त है, जो एक बड़ी आबादी को वंचित और दुख के चरम पर ले जाती है। समतावादी आदर्शों वाले भारत के संविधान का उद्देश्य अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में वर्गीकृत आबादी द्वारा सामना की जाने वाली अक्षमताओं को दूर करना था और इसने उनकी स्थिति में सुधार के लिए सुरक्षात्मक उपाय प्रदान किए। विभिन्न उपचारात्मक उपायों के बावजूद, ओबीसी अभी भी जाति पदानुक्रम के निचले पायदान पर स्थित होने की बदनामी और कलंक का सामना करते हैं और निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति से पीड़ित हैं। व्यावसायिक रूप से, ओबीसी फील्ड वर्कर या कारीगर के रूप में लगे हुए हैं और भारत की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन उनकी अब तक निम्न स्थिति है।[1] ओबीसी के पारंपरिक व्यवसाय औद्योगीकरण की प्रक्रिया से अत्यधिक प्रभावित हुए। उद्योगों की स्थापना ने उन्हें आर्थिक रूप से पंगु बना दिया। उनके सदियों पुराने व्यवसाय समाप्त हो गए और वे केवल मजदूर या श्रमिक बन गए। वे या तो बेरोजगार हैं या असंगठित क्षेत्रों में लगे हुए हैं जो स्पष्ट रूप से उनकी निम्न स्थिति को दर्शाता है।

सामाजिक न्याय

पश्चिमी विचार और राजनीतिक भाषा में, सामाजिक न्याय की अवधारणा सबसे पहले समाजवादी सिद्धांत के विकास के दौरान सामने आई। यह श्रम के पूंजीवादी शोषण के रूप में और मानव स्थिति में सुधार के उपायों के विकास के केंद्र बिंदु के रूप में माना जाने वाला व विरोध की अभिव्यक्ति के रूप में उभरा।

सामाजिक न्याय एक नियमित समस्या है। सामाजिक न्याय गरीबी, भेदभाव, प्रणालीगत नस्लवाद, बहिष्करण, लैंगिक असमानता, बेरोजगारी, मानवाधिकारों के उल्लंघन और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को संबोधित करने का प्रयास करता है। सामाजिक न्याय की खोज सामाजिक विकास और मानव गरिमा को बढ़ावा देने की दिशा में सक्षम है। संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव बान–की–मून के शब्दों में, दुनिया भर में सबसे गरीब और सबसे धनी लोगों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। यह स्थिति न केवल देशों के बीच बल्कि उनके भीतर भी है, जिसमें कई सबसे समृद्ध भी शामिल हैं। सामाजिक न्याय वैश्विक और राष्ट्रीय एकजुटता के रास्ते में एक बड़ी बाधा है।

सामाजिक न्याय बहुत जटिल है क्योंकि जब हम विकास को मापते हैं, तो यह विकास का गैर–भौतिक संकेतक होता है। सामाजिक न्याय लोगों को उनका बकाया दे रहा है, लोगों को वह दे रहा है जिसके वे हकदार हैं। दूसरे शब्दों में , इसका कार्य सभी समूहों की समान भागीदारी और मानव अधिकारों की रक्षा करना है।

सैद्धांतिक रूप से, सामाजिक न्याय की अवधारणा इस आधार पर आधारित है कि सभी लोगों को समान मूल अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त है, और यह समानता और समता दोनों के बुनियादी मुद्दों से जुड़ा है। समानता एक ऐसी चीज है जिसका अर्थ एकरूपता है और जहां सभी के साथ समान व्यवहार करने का प्रयास किया जाता है, जबकि समता निष्पक्ष प्रणाली और न्यायपूर्ण व्यवहार और निष्पक्षता को सुनिश्चित करता है। इसलिए परिणाम में समानता बहुत महत्वपूर्ण है जिसका मूल रूप से अर्थ समान अवसरों तक पहुंच है। जब हम सामाजिक न्याय की बात करते हैं तो समानता और समता दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण हैं।

हमारे संविधान के निर्माता भारतीय समाज में मौजूद भयावह सामाजिक असमानताओं से अच्छी तरह वाकिफ थे। वे न्याय का एक ऐसा रूप प्रदान करने की आवश्यकता को समझते थे जो स्वतंत्रता आंदोलन की अपेक्षाओं को पूरा करेगा। जैसा कि नेहरू ने इसे संविधान सभा के सामने रखा और कहा कि,

''इस सभा का पहला काम एक नए संविधान द्वारा भारत को स्वतंत्र बनाना है जिसके माध्यम से भूखे लोगों को पूरा

भोजन और वस्त्र मिलेगा और प्रत्येक भारतीय को सबसे अच्छा विकल्प मिलेगा कि वह स्वयं प्रगति कर सके।''

एक समाज के भीतर धन के अवसरों और विशेषाधिकारों के वितरण के संदर्भ में सामाजिक न्याय पश्चिमी और पुरानी संस्कृतियों में देखा जा सकता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा ने अक्सर यह सुनिश्चित करने की प्रक्रिया का उल्लेख किया है कि व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं को पूरा करते हैं और समाज में जो उनको अधिकार है वे उसे प्राप्त करते हैं। सामाजिक न्याय के लिए वर्तमान आंदोलनों में सामाजिक गतिशीलता के लिए बाधाओं को तोड़ने, सुरक्षा जाल के निर्माण पर और आर्थिक न्याय पर जोर दिया गया है। सामाजिक न्याय समाज के संस्थानों में अधिकार और कर्तव्य प्रदान करता है जो लोगों को बुनियादी लाभ और सहयोग प्राप्त करने में सक्षम बनाता है।

सरकार सामाजिक न्याय को लागू करने वाली संस्था या एजेंसी है। अगर सामाजिक न्याय की व्यवस्था को पूरे देश में लागू करना है तो सबसे पहले मानसिकता बदलनी होगी। केवल कानून के बारे में बात करने और वास्तव में कानून को लागू न करने का कोई मतलब नहीं है। सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान करना सामाजिक न्याय प्रणाली की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है क्योंकि सेवाओं के अलावा कई अन्य मंच हैं जहां सामाजिक न्याय को ठीक से लागू नहीं किया जा रहा है। इसलिए सामाजिक न्याय प्रणाली को देश और समाज के सभी नुक्कड़ और कोनों के माध्यम से उचित तरीके से लागू किया जाना चाहिए– सुदूर गांवों से लेकर शहरी लोगों और शहरी क्षेत्र तक, ताकि अवधारणा को व्यापक रूप से स्वीकार किया जा सके। हमें कानून को अपने दिमाग में लाना होगा और कानून को अपनी मानसिकता से, अवधारणाओं और व्यवहार में बदलाव के बारे में अपनी बदलती आम सहमति के माध्यम से लागू करना होगा।

अन्य पिछड़े वर्ग में सामाजिक न्याय की अवधारणा

भारत का सामाजिक न्याय और संविधान समाजवादी लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर एक नई सामाजिक व्यवस्था प्राप्त करने के लिए समाज के ''सबसे कम पसंदीदा सदस्यों'' के पक्ष में सुरक्षात्मक भेदभाव के साथ मिलकर सभी सामाजिक प्राथमिक वस्तुओं के वितरणात्मक न्याय के समान फैलाव की कल्पना करता है। सामाजिक न्याय उचित और न्यायसंगत प्रक्रियाओं के अस्तित्व की मांग करता है जो आम लोगों के अधिकारों की खोज और संरक्षण के लिए अनुकूल हैं। इसलिए, न्याय तक पहुंच को आम आदमी के लिए एक सार्थक अवधारणा प्रदान करने के लिए प्रक्रियाओं को अनिवार्य रूप से तकनीकीताओं से मुक्त किया जाना चाहिए।

सामाजिक न्याय की अवधारणा में एक नई मानव व्यवस्था और समतावादी समाज के निर्माण की परिकल्पना की गई है, जिसमें लैंगिक न्याय, दलित न्याय और पुरानी असमानता के बीच समान न्याय का आश्वासन दिया गया है । सामाजिक–आर्थिक न्याय ने सामाजिक नैतिकता को जन्म दिया और फिर एक लागू करने योग्य सूत्र बन गया और इसलिए यह आर्थिक शोषण से घृणा करता है। सामाजिक न्याय व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर विचार करता है और वितरणात्मक न्याय पर भी जोर देता है। इस प्रकार न्यायपालिका द्वारा सामाजिक न्याय की अवधारणा के लिए अभिकल्पित अर्थ और अद्वितीय भूमिका ने सामाजिक न्याय को महत्व प्राप्त करने के लिए एक बहुआयामी जीवंत अवधारणा बना दिया है।

प्रतिपूरक भेदभाव की नीति के तहत, एक समाज में कुछ जातियों/समूहों/समुदायों या वर्गों की पहचान की जाती है, जो सदियों से विशेषाधिकार से वंचित हैं, और उन्हें अपने समाज के आगे के क्षेत्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए कुछ प्राथमिकताएं दी जाती हैं। भारत में, इस नीति के तहत तीन बुनियादी प्रकार की प्राथमिकताएं हैं, सबसे पहले, ऐसे आरक्षण हैं, जो विधायी में मूल्यवान सीटों तक पहुंच, सरकारी सेवाओं में पदों के आरक्षण, और शैक्षणिक संस्थानों में स्थानों के आरक्षण को आवंटित या सुविधा प्रदान करते हैं। कुछ हद तक, आरक्षण उपकरण का उपयोग भूमि आवंटन, आवास और अन्य संसाधनों के वितरण में भी किया जाता है। दूसरा, ऐसे कार्यक्रम हैं जिनमें व्यय या सेवाओं का प्रावधान शामिल है उदाहरण, छात्रवृत्ति, अनुदान, ऋण, भूमि आवंटन, स्वास्थ्य देखभाल, एक लाभार्थी समूह को कानूनी सहायता दूसरों के लिए तुलनीय व्यय से परे। तीसरा विशेष सुरक्षा सिद्धांत पिछड़े वर्गों को छुआछूत, बंधुआ मजदूरी का निषेध और शोषित और पीड़ित होने से बचाने के प्रयास भी किए जाते हैं।

सबसे पहले, भारत में पिछड़ेपन की समस्या सामाजिक अन्याय के एक लंबे इतिहास से उत्पन्न हुई है जो कि अधिक आर्थिक पिछड़ापन नहीं है। इस प्रकार आरक्षण के आधार के रूप में आर्थिक मानदंड के लिए तर्क देने वालों का उद्देश्य पिछड़ी जातियों के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना है।

दूसरे, आरक्षण प्रणाली ने भारत में मध्यम वर्ग को सामाजिक रूप से विविध बना दिया है और इसने पारंपरिक रूप बदल दिया है। यदि आरक्षण व्यवस्था को अन्य पिछड़ी जातियों तक भी विस्तारित किया जाता है, तो यह एक बहुत बड़ा मध्यम वर्ग बनाने की दिशा में एक कदम होगा जो जाति संरचना को कमजोर करने में मदद करेगा।

तीसरा, आरक्षण आदि जैसे विभिन्न कार्यक्रम जाति संरचना को विघटित करने में मदद करते हैं। नौकरी में आरक्षण जाति और व्यवसाय के बीच के समवर्ती संबंध को तोड़ने में मदद करता है। व्यक्ति ऐसे व्यवसाय करना शुरू कर देते हैं जो उनकी जाति पृष्ठभूमि से संबंधित नहीं होते हैं। उच्च स्तर की शिक्षा भी ऐसी जातियों के बीच एक आधुनिक वर्ग का निर्माण करती है। इस प्रकार पिछड़ी जातियाँ सामाजिक जीवन में भाग लेने में सक्षम हो जाती हैं।

ओबीसी की अपनी अलग पहचान होती है, उन्हें हमेशा उन्हीं पहचानों से पहचाना जाता है लेकिन पहचान के आधार पर सामाजिक परिवर्तन कभी नहीं हुआ। इसके लिए उन्हें एक खास विचारधारा की जरूरत है। इसलिए यदि हमें सामाजिक परिवर्तन लाना है तो इन सभी पहचानों को निश्चित विचारधारा का अनुयायी होना चाहिए। इस प्रकार हमें पहचान से विचारधारा की ओर बढ़ना है लेकिन यदि हम विचारधारा से पहचान की ओर बढ़ते हैं तो सामाजिक परिवर्तन कभी नहीं होगा।

सामाजिक न्याय एक ऐसे समाज की आदर्श स्थिति है जहां किसी भी समूह या व्यक्तियों को अपना बकाया नहीं मिलने की कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि विभिन्न वर्गों और रैंकों के सभी व्यक्तियों को उनकी जरूरतों और अधिकारों के अनुसार कुछ उचित या तार्किक आधार पर संसाधनों के साथ आवंटित किया जाता है।[2] आरक्षण सरकारी नौकरियों और शैक्षिक संस्थानों और राजनीतिक क्षेत्र में कुछ प्रतिनिधित्व देने के लिए एक उपकरण है। लेकिन अन्य कल्याणकारी उपाय होने चाहिए, जो उन्हें सामाजिक स्थिति और उत्थान के साथ–साथ सामाजिक न्याय भी प्रदान करें।

ओबीसी के सवाल पर बेटेल कहते हैं, ''अन्य पिछड़े वर्गों के मूल में विभिन्न विवरणों की किसान जातियां शामिल हैं। व्यापक समाज में इन जातियों का स्थान हरिजनों से भिन्न है। अक्सर वे वर्ण पदानुक्रम में निम्न स्थान पर काबिज होते हैं और वे सामान्य रूप से साक्षरता की परंपराओं से रहित रहे हैं। इसके अलावा, ''चूंकि वे पश्चिमी शिक्षा की खोज में भी पिछड़ गए हैं, उन्हें अक्सर सरकारी नौकरियों और सामान्य रूप से सफेदपोश व्यवसायों में खराब प्रतिनिधित्व दिया जाता है''।[3]

अन्य पिछड़े वर्गों की स्थिति का पता लगाने के लिए सरकार ने क्रमशः 1953 और 1979 में दो आयोगों का गठन किया। काका कालेलकर आयोग (1953) पहला पिछड़ा वर्ग आयोग था और दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग मंडल आयोग के रूप में जाना जाता है।

काका कालेलकर आयोग ने 2,399 समुदायों को पिछड़े के रूप में सूचीबद्ध किया।[4] इसके अलावा, इसने 837 समुदायों को 'सबसे पिछड़े' के रूप में पहचाना है। आयोग ने प्रथम श्रेणी में 25 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में 33.3 प्रतिशत और तृतीय श्रेणी व चतुर्थ श्रेणी में 40 प्रतिशत तथा सभी तकनीकी और व्यावसायिक संस्थानों में 70 प्रतिशत सीटों की सिफारिश की। कालेलकर आयोग की सिफारिशों की रिपोर्ट 1961 में चर्चा के बाद संसद द्वारा खारिज कर दी गई थी।

जनवरी, 1979 में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा स्थापित मंडल आयोग ने दिसंबर 1980 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।[5] आयोग ने 3,743 हिंदू जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में पाया, आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की कुल जनसंख्या का अनुमान 52 प्रतिशत लगाया। पिछड़ा वर्ग आयोग ने ओबीसी के लिए 52 प्रतिशत आरक्षण का सुझाव दिया था, लेकिन सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। इसलिए, इसने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए मौजूदा 22.5 प्रतिशत को ध्यान में रखते हुए, ओबीसी में 27 प्रतिशत की मात्रा का सुझाव दिया।

मंडल आयोग ने राज्य में 27 प्रतिशत नौकरियों की सिफारिश की (ए) केंद्रीय सेवाओं, (बी) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, (सी) राष्ट्रीयकृत बैंकों, (डी) विश्वविद्यालयों और संबद्ध कॉलेजों, (ई) निजी क्षेत्र में सरकारी सहायता प्राप्त फर्मों और (एफ) राज्य सरकारें और सभी स्तरों पर पदोन्नति में। इसने केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा संचालित शिक्षा के सभी वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक संस्थानों में 27 प्रतिशत सीटों की भी वकालत की। अगस्त 1990 को सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, जिसकी शुरुआत केंद्रीय सेवाओं और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में 27 प्रतिशत नौकरियों के आरक्षण से हुई थी, लेकिन यह 1994 से ही अपनी सिफारिशों को लागू कर सका।

एक समान और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए संविधान ने दो दृष्टिकोण अपनाए। सबसे पहले, हर प्रकृति की भेदभावपूर्ण प्रथाओं को दंडनीय अपराध घोषित किया गया था और कानून को सभी के लिए समान व्यवहार सुनिश्चित किया गया था। संविधान के कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं जो समानता और सामाजिक न्याय के मुद्दे से सरोकार रखते हैं।

अनुच्छेद 14[6] कानून के समक्ष समानता की चर्चा करता है।

अनुच्छेद 15[7] धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव के निषेध से संबंधित है।

अनुच्छेद 16[8] सार्वजनिक रोजगार के मामलों में समान अवसर की बात करता है।

अनुच्छेद 17[9] अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करता है।

भारत का संविधान सामाजिक न्याय के विभिन्न घटकों को मान्यता देता है और उन्हें साकार करने का प्रयास

करता है अनुच्छेद 14 प्रत्येक व्यक्ति को ''कानून के समक्ष समानता या भारत के क्षेत्र के भीतर कानूनों के समान संरक्षण'' की गारंटी देता है। अनुच्छेद 15(1) किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। इसी दृष्टि से अनुच्छेद 16(1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान करता है। अनुच्छेद 17 ''अस्पृश्यता'' के द्वारा सदियों पुरानी प्रथा को उसकी सभी अभिव्यक्तियों के साथ समाप्त कर दिया गया है। अस्पृश्यता से उत्पन्न होने वाली किसी भी विकलांगता को लागू करना कानून के अनुसार अपराध घोषित किया गया है। इसी तरह का प्रावधान भारतीय दंड संहिता में भी शामिल किया गया है। अनुच्छेद 46[10] सामाजिक न्याय के दिल और आत्मा का गठन करता है। यह प्रावधान करता है कि राज्य समाज के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष देखभाल के साथ बढ़ावा देगा और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।

अनुच्छेद 16 (4) राज्य को नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के पक्ष में पदों की आरक्षण नियुक्तियों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है, जो राज्य की राय में राज्य के तहत सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। इस प्रकार अनुच्छेद 16 (4) केवल तभी लागू होता है जब दो शर्तें पूरी होती हैंः (1) नागरिकों का वर्ग सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ा हुआ है और उक्त वर्ग का राज्य की सेवा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। दूसरा परीक्षण एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता। अनुच्छेद 16 (4) में ''पिछड़े वर्ग'' की अभिव्यक्ति का उसी अर्थ में उपयोग किया गया है जैसे अनुच्छेद 15 (4) में किया गया है। सुप्रीम कोर्ट ने कई मामलों में अभिव्यक्ति की माप और दायरे पर विचार किया है।

ये संवैधानिक प्रावधान स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जाति, धर्म, नस्ल, लिंग और भाषा आदि के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा और प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समान व्यवहार का आनंद मिलेगा। इसके अलावा, सदियों से वंचितों के जीवन को और अधिक दयनीय ना बनाने पर विचार करते हुए, संविधान ने इससे निपटने के लिए एक अधिक व्यावहारिक तरीका अपनाया। इसलिए, ''सकारात्मक कार्रवाई'' के प्रावधान को संवैधानिक रूप से असमान के लिए तरजीही उपचार के लिए अपनाया गया था क्योंकि यह माना जाता है कि ''केवल समानों के बीच समानता है। असमान की बराबरी करना असमानता को बनाए रखना है।[11]

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है, उन लोगों के लिए न्याय प्राप्त करने की खोज है जो उत्पीड़ित, दबे हुए, कुचले गए, शोषित, भेदभाव ग्रस्त और वंचित हैं। भारतीय समाज पदानुक्रमित समाज का एक उत्कृष्ट उदाहरण है और लोगों के साथ उनकी जाति की स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाता है। सामाजिक न्याय एक ऐसे समाज की आदर्श स्थिति है जहां किसी भी समूह या व्यक्तियों को समानता व समता का पूर्ण लाभ मिलता है, क्योंकि विभिन्न वर्गों और पदों के सभी व्यक्तियों को उनकी जरूरतों और अधिकारों के अनुसार कुछ उचित या तार्किक आधार पर संसाधनों के साथ आवंटित किया जाता है।

इस प्रकार असमान, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ विभिन्न समुदायों के बीच अंतर पैदा करेंगी और यह उनके बीच संघर्ष को जन्म देगी, जो लोगों और पूरे राष्ट्र के समग्र विकास के लिए भी एक बड़ी बाधा होगी। मंडल आयोग का कार्यान्वयन अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सामाजिक न्याय का एक हिस्सा था, जिनकी पहचान हमारे समाज के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी) के रूप में की गई थी। सरकारी नौकरियों, राजनीतिक दलों और शैक्षणिक संस्थानों में उनके प्रतिनिधित्व की कमी थी।

सामाजिक न्याय का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। इसलिए सामाजिक न्याय भारत और उसके पिछड़े वर्गों में एक महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि यह व्यक्तियों के साथ–साथ समूहों के जीवन को भी प्रभावित करता है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य अन्याय के खिलाफ बोलना और दुनिया भर में इस विचार को बढ़ावा देना है।

सन्दर्भ –

1. Jaffrelot, C. (2000). Rise Of Other Backward Classes In The Hindi Belt. The Journal Of Asian Studies : Page 86.
2. Sharma, C.L. (1997), The Status of Backward Classes and Social Justice in India, in Pathak, B. (ed.), Social Justice and Development of Weaker Sections, New Delhi: Inter India Publications : Page 164.
3. Beteille. (1969). Castes: Old And New, Essays in Social Structure and Social Stratification. New York: Asia Publishing House : Page 111.
4. Government of India (1980), Report of Backward Classes Commission : Page 1.

5. Government of India (1980), Report of Backward Classes Commission : Page 1.
6. The Constitution of India (2020), Government Of India : Ministry Of Law And Justice Legislative Department: Page 25.
7. The Constitution of India (2020), Government Of India : Ministry Of Law And Justice Legislative Department: Page 25.
8. The Constitution of India (2020), Government Of India : Ministry Of Law And Justice Legislative Department: Page 26.
9. The Constitution of India (2020), Government Of India : Ministry Of Law And Justice Legislative Department: Page 27.
10. The Constitution Of India (2020), Government Of India : Ministry Of Law And Justice Legislative Department: Page 35.
11. GoI. (1980). Report of The Backward Classes Commission. New Delhi: Government of India: Page 1.